Research Papers

ISSN 2320-4443
UGC Care Listed

परामर्श

(हिन्दी)

खण्ड ३४ अंक १-४
दिसंबर २०१३ - नवंबर २०१४
भारतीय सौर कार्तिक - मार्गशीर्ष शके १९३५-३६
प्रकाशन वर्ष - जनवरी, २०२१

दर्शनशास्त्र विभाग
सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय प्रकाशन

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में आतंकवाद और जेहाद

अखिलेश्वर प्रसाद दुबे और मोह. एजाज़ खान

आज यदि किसी से प्रश्न किया जावे कि वह कौन-सा शब्द है जो सर्वाधिक भय उत्पन्न करता है? निश्चित तौर पर इसका उत्तर होगा - आतंकवाद। विश्व में ऐसा कोई भी हिस्सा नहीं है जो आतंकवादी गतिविधियों से रहित हो। भारत के सन्दर्भ में यदि देखें तो कश्मीर, पंजाब से लेकर उत्तर-पूर्वी प्रान्त हो या दक्षिणी राज्य सभी आतंकवादी गतिविधियों से भयाक्रान्त हैं। आखिर यह आतंकवाद है क्या? इसका इतिहास क्या है? इसका उद्देश्य क्या है? क्या आतंकवाद और जेहाद समान हैं? आदि-आदि प्रश्न लगातार जनमानस को उद्वेलित करते हैं।

आतंकवाद की कोई सार्वभौमिक परिभाषा नहीं दी जा सकती, बहरहाल आतंकवाद पर विशेषज्ञता रखने वाले इसे कुछ इस तरह परिभाषित करने का प्रयास करते हैं – अपने उद्देश्य के लिए लोगों को डरा-धमका कर व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह द्वारा चलाया गया सुनियोजित अभियान आतंकवाद है (ब्रेन एम. जेनकिन्स : सम्पादक डेविड कार्लटन एवं कार्लो सेरिफ। 'अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद एवं विश्व सुरक्षा' विषय पर प्रस्तुत लेख)। स्वार्जेन वर्गर के अनुसार आतंकवादी वह हैं जो अपने मन में विचारे गए उद्देश्य की प्राप्ति बल प्रयोग से भय पैदा कर प्राप्त करता है (इन्टरनेशनल लॉ एण्ड आर्डर, पृ. २१९) इसी प्रकार प्रिवेन्शन एण्ड पनिशमेंन्ट विषय पर आयोजित अन्तरराष्ट्रीय अधिवेशन, १९३७ में आतंकवाद को इस प्रकार परिभाषित किया है - किसी राज्य के विरुद्ध सुनियोजित व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह अथवा जनसामान्य द्वारा किया गया आपराधिक कृत्य (हिंसा), आतंकवाद है। उपरोक्त परिभाषाओं से यह तथ्य सामने आता है कि सामान्यतः समाज में किसी समूह विशेष द्वारा हिंसा के सहारे लोगों को भयाक्रान्त कर अपने उद्देश्य को प्राप्त करना आतंकवाद है। इससे यह भी स्पष्ट है कि यह जनसामान्य पर अपनी इच्छा थोपना है। आतंकवाद समर्थकों के उद्देश्य अलग-अलग होते हैं। यथा, जबर्दस्ती भूमि पर कब्जा हो, डकैती हो,

संस्थापक–सम्पादक
यशदेव शल्य

सम्पादक
अम्बिकादत्त शर्मा
प्रदीप कुमार खरे

उन्मीलन

मानसिक हिन्द स्वराज का वैतालिक
दार्शनिक षाण्मासिक

वर्ष 35, अंक 1
जनवरी-जून, 2021

अभिनवगुप्त सम्मत वस्तुवाद का खण्डन और स्वतन्त्राद्वैत का मण्डन

अम्बिकादत्त शर्मा

घटो मदात्मना वेत्ति वेद्म्यहं च घटात्मना
सदाशिवात्मना वेद्मि स वा वेत्ति मदात्मना
नाना भावैः स्वात्मानं जानन्नास्ते स्वयं शिवः ।।

परम संवित् की परिव्याप्ति सर्वत्र है। सभी पदार्थ सर्वत्र अपने को जानते हुए स्थित हैं। कोई पदार्थ अज्ञ नहीं, क्योंकि चित् सर्वत्र व्याप्त है – मयुराण्ड रस की तरह। इसीलिए शिवदृष्टि में सोमानन्द की उपस्थापना है कि घट अपने को मेरे रूप में और मैं अपने को घट रूप में जानता हूँ। मैं अपने को शिव रूप में और शिव अपने को मेरे रूप में जानता है। स्वयं शिव ही नाना भावों के रूप में अपने आप को जानता है। अतः अनन्त विचित्रताओं से युक्त यह विश्व का नानात्व परम संवित् की आत्मगवेषणा, उसकी स्वातन्त्र्य शक्ति का आत्मोल्लास रूप चिद्विलास है।

I

सोमानन्द के उपयुक्त कथन को एक प्रत्ययवाद विशिष्ट अद्वयवादी दर्शन का उपस्थापक अभिकथन स्वीकार किया जा सकता है। स्पष्ट है कि ऐसे दर्शन में प्रमाता और प्रमेय के आत्यन्तिक द्वैत के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता। यद्यपि यह द्वैत हम सभी के द्वारा अनुभूत किया जाता है फिर भी यह परम संवित् का ही आभास है, उसका विवर्त नहीं; जैसा कि अद्वैत वेदान्ती जागतिक प्रपंचों को ब्रह्म का विवर्त मानते हैं। अतः काश्मीर शैवदर्शन में एक सक्रिय प्रमाता के अतिरिक्त ज्ञान–विषय को इस रूप में अवधारित किया गया है जो अपने स्वरूप में प्रमाता के स्वभाव के विरुद्ध नहीं है। यदि ज्ञान का विषय सदैव ही विषयी के विरोधी स्वभाव वाला हो तो ज्ञान की कोई सम्भावना

उन्मीलन - वर्ष 35, अंक 1, जनवरी–जून 2021
ISSN-0974-0053
U.G.C. Care List : Arts & Humanities, Sl.No. 310

श्रद्धा-सुमन

यशदेव शल्य : मानवीय सर्जना के चिदद्वैतवादी तत्त्वमीमांसक

अम्बिकादत्त शर्मा

'दर्शन' पद के साथ 'भारतीय' विशेषण भौगोलिकता का वाचक न होकर विचार की एक विशिष्ट गोत्र और परम्परा का द्योतक है। इस दृष्टि से श्री अरविन्द के बाद इस देश में दार्शनिक गतिविधियों से सरोकार रखने वाले बहुतेरे महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों को 'भारत का दार्शनिक' तो कहा जा सकता है, लेकिन एक 'संस्थापक भारतीय दार्शनिक' की पदवी से केवल **यशदेव शल्य (26 जून 1928–31 जनवरी 2021)** ही अभिहित किये जा सकते हैं। भारत के वैचारिक स्वराज और राष्ट्रभाषीय राजपथ पर अपने चिन्तन को पुरोगामी रूप से अग्रसारित करते हुए उन्होंने जो दार्शनिक स्थापनायें प्रस्तुत की हैं, वह स्वातंत्र्योत्तर भारत की एक महत्त्वपूर्ण दार्शनिक उपलब्धि है। उनके लिए 'दर्शन' तमाम ज्ञान–विधाओं की तरह कोई विषयमूलक–व्यवस्था नहीं बल्कि ज्ञान का एक आत्मोन्मुख व्यापार है जो निरन्तर अपने आरम्भ बिन्दु से प्रारम्भ कर उसी पर लौटता है। दर्शन के स्वरूप विषयक इस व्यावर्त्तक अन्तर्दृष्टि को आत्मसात् करते हुए मानवी स्तर पर आत्मचेतन हुई चेतना को अपने दार्शनिक अध्यवसाय का प्रस्थान–बिन्दु बनाकर उन्होंने 'मनुष्य के जगद्भाव' की जैसी तत्त्वमीमांसा प्रस्तुत की है, उससे मानवीय सर्जना के सभी पक्षों की व्याख्या एक चकित कर देने वाली मौलिकता के साथ सम्भव हुई है। यदि उनकी तुलना किसी पाश्चात्य दार्शनिक से की जाये तो उनका दार्शनिक अध्यवसाय हुस्सर्ल और हाइडेग्गर के समकक्ष ठहरता है। यह बात अलग है कि भारत का दार्शनिक जगत् उनके दार्शनिक अध्यवसाय से परिचित नहीं हो सका है, क्योंकि भीष्म संकल्प के साथ उन्होंने बहुत लिखा लेकिन सब कुछ हिन्दी में लिखा है।

उन्मीलन - वर्ष 35, अंक 1, जनवरी–जून 2021
ISSN-0974-0053
U.G.C. Care List : Arts & Humanities, SI.No. 310

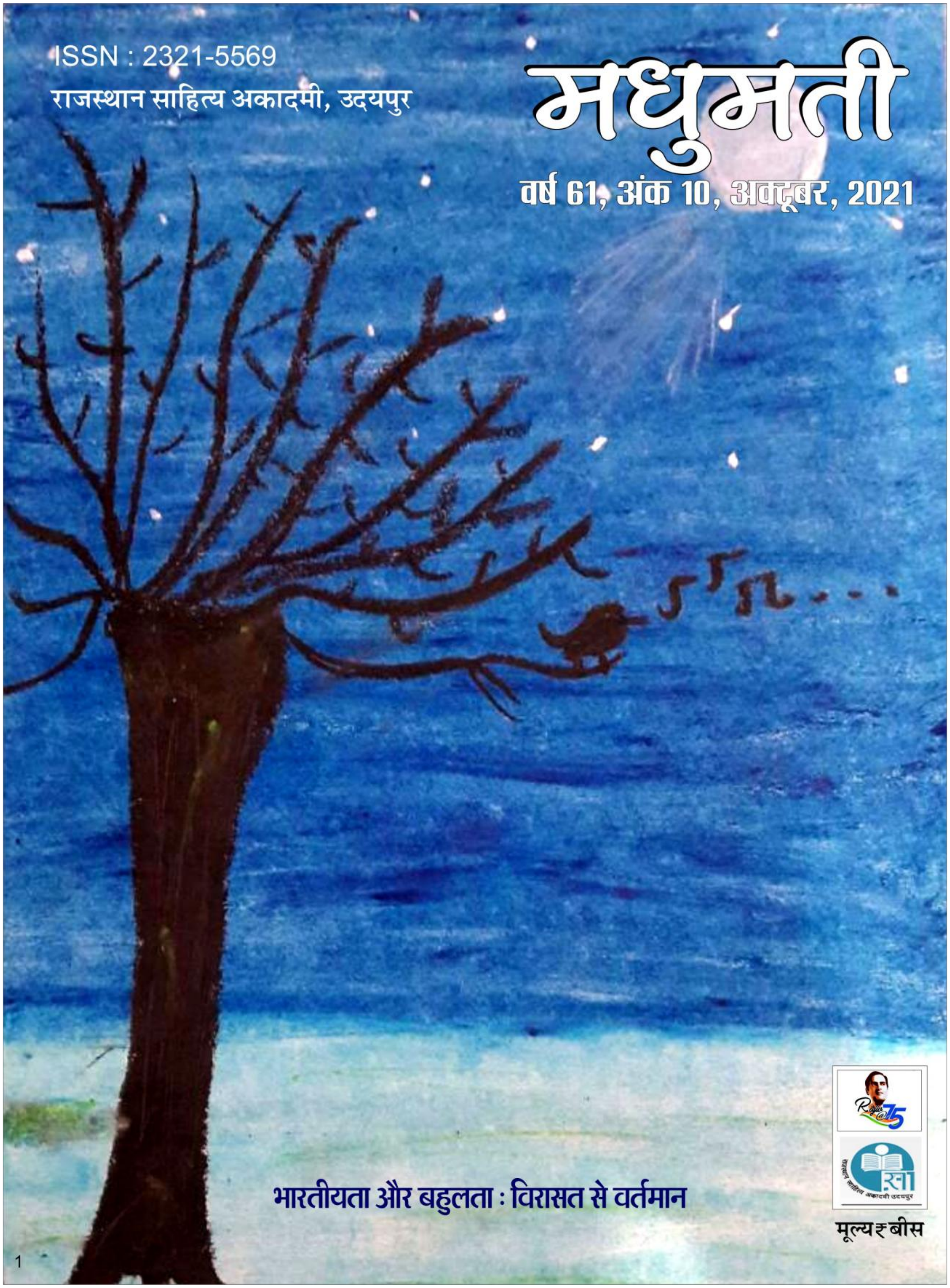

ISSN : 2321-5569

राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर

मधुमती

वर्ष 61, अंक 10, अक्टूबर, 2021

भारतीयता और बहुलता : विरासत से वर्तमान

मूल्य ₹ बीस

मधुमती

वर्ष 61, अंक 10, अक्टूबर, 2021

UGC Care list Group 'D' Sl. No. 57

प्रधान सम्पादक

राजेन्द्र भट्ट

आई.ए.एस.

सम्पादक

ब्रजरतन जोशी

प्रबन्ध सम्पादक

डॉ. बसन्त सिंह सोलंकी

प्रबन्ध सहयोग

राजेश मेहता

आवरण एवं रेखांकन

सुदीप्ति

अंक का मूल्य : 20/-
वार्षिक शुल्क : 240/-

(वार्षिक शुल्क धनादेश, बैंक ड्राफ्ट, एटपार चैक या नकद एवं ऑनलाइन हस्तान्तरण की व्यवस्था है। सचिव, राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर के नाम से ही भेजें)

प्रकाशक

सचिव, राजस्थान साहित्य अकादमी,
सेक्टर-4, हिरण मगरी, उदयपुर (राज.) - 313 002
दूरभाष : 0294-2461717

मुद्रक

न्यूट्रेक ऑफसेट प्रिन्टर्स,
13, भोपा मगरी, न्यूजट्रेक नगर, हिरण मगरी,
सेक्टर-3, उदयपुर - 313 002

- : मधुमती के फेसबुक पेज से जुड़ें : -

https : www.facebook.commadhumatihindi

मधुमती में प्रकाशित रचनाओं का सर्वाधिकार रचनाकारों के पास है। मधुमती में प्रकाशित लेखों/ रचनाओं में व्यक्त विचार/ तथ्य लेखकों द्वारा प्रस्तुत हैं। मधुमती में प्रकाशित रचनाओं के लिए राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर का सहमत होना आवश्यक नहीं है और न ही अकादमी इसके लिए उत्तरदायी है।

भारतीय संस्कृति : एकात्मक अथवा सामासिक

अम्बिकादत्त शर्मा

भारतीय संस्कृति अपनी आत्मप्रतिमा और मौलिक प्रतीक के गुण-सूत्रों के साथ एकात्मक है अथवा यह एक सामासिक (कम्पोजिट) संस्कृति है; इस प्रश्न पर विचार करने से पहले संक्षेप में सर्वप्रथम संस्कृति की अवधारणा पर विचार कर लेना उपयुक्त होगा। संस्कृति के सम्बन्ध में सामान्य तौर पर दो विपरीत धारणायें प्रचलित हैं। प्रथम के अनुसार एक क्षेत्र-विशेष के लोगों के रहन-सहन, रीति-रिवाज, दृष्टिकोण और रचनाओं में एक प्रकार की अनुरूपता पायी जाती है, इसी को संस्कृति कहते हैं। दूसरे के अनुसार बाहर से दिखाई पड़ने वाली यह क्षेत्रीय और कालक्रम में रूढ़ हो गई अनुरूपता एक अन्तर्गत तत्त्व की बाहरी अभिव्यक्ति होती है और वह अन्तर्गत सामरस्य ही संस्कृति है। यदि देखा जाए तो संस्कृति विषयक उपयुक्त दोनों अवधारणाएँ व्यापक दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में व्यक्ति विषयक दो दृष्टिकोणों में मूलित कही जा सकती हैं। उदाहरण के लिए एक दृष्टिकोण से व्यक्ति शरीर विशेष के ऐच्छिक-अनैच्छिक क्रिया-व्यापारों और भाषायी व्यवहार में दिखाई पड़ने वाली संगति या अनुरूपता है और दूसरे दृष्टिकोण के अनुसार चेष्टाओं एवं व्यवहार की अनुरूपता किसी अन्तर्गत एकत्व में प्रतिष्ठित होती है और वही अन्तर्गत-एकत्व व्यक्ति का सार है। व्यक्ति का यह अन्तर्गत एकत्व दो तरीके से कार्य करता है। इसमें पहले को वैयक्तिक अनन्यता (पर्सनल आईडेंटिटी) कह सकते हैं जो प्रत्यभिज्ञा की ज्ञानमीमांसीय क्रिया को न केवल आधार देती है बल्कि उसके माध्यम से अभिव्यक्त भी होती है। एक लम्बे अन्तराल के बाद भी जब हम किसी व्यक्ति को *वही व्यक्ति* के रूप में पहचानते हैं, तो हमारी इस प्रत्यभिज्ञा के माध्यम से उस व्यक्ति की वैयक्तिक अनन्यता ही प्रमाणित होती है। पुनः व्यक्ति के अन्तर्गत एकत्व का एक वृहत्तर आयाम उसकी सांस्कृतिक अनन्यता में देखा जा सकता है। यह सांस्कृतिक अनन्यता साधारण तौर पर परस्पर व्यवहारों के आदान-प्रदान के मर्यादित प्रारूपों के माध्यम से अभिव्यक्ति पाती है। सांस्कृतिक अनन्यता के चलते ही व्यक्ति को किसी भिन्न परिवेश में बाहरीपन का, परायेपन का बोध होता है। पागल व्यक्ति में वैयक्तिक अनन्यता तो होती है लेकिन उसमें सांस्कृतिक अनन्यता सचेतन रूप से कार्य नहीं करती है। सांस्कृतिक अनन्यता के चलते ही व्यक्ति एकल सांस्कृतिक निष्ठा से परिभाषित होता है।

जब हम किसी संस्कृति के धर्म, नीति, दर्शन, साहित्य, विज्ञान और कलाकृतियों की बात करते हैं तो वास्तव में उस अन्तर्गत एकत्व को ही लक्षित कर रहे होते हैं और उसके आधार में एक ऐसी आत्मप्रतिमा होती है जो विशेष न होकर सामान्य प्रकार की होती है।

I

द्रष्टव्य है कि व्यक्ति और संस्कृति विषयक उपर्युक्त दो दृष्टिकोणों में उभय विषयक दूसरा दृष्टिकोण

ISSN 2321-5569

मधुमती

वर्ष 61, अंक 9, सितम्बर, 2021

UGC Care list Group 'D' Sl.No. 57

प्रधान सम्पादक
राजेन्द्र भट्ट
आई.ए.एस.

सम्पादक
ब्रजरतन जोशी

www.rsaudr.org
email : madhumati.udaipur@gmail.com

मधुमती

वर्ष 61, अंक 9, सितम्बर, 2021

UGC Care list Group 'D' Sl. No. 57

प्रधान सम्पादक

राजेन्द्र भट्ट

आई.ए.एस.

सम्पादक

ब्रजरतन जोशी

प्रबन्ध सम्पादक

डॉ. बसन्त सिंह सोलंकी

प्रबन्ध सहयोग

राजेश मेहता

आवरण एवं रेखांकन

किरण राजपुरोहित 'नितिला', मो. 7568068844

अंक का मूल्य : 20/-

वार्षिक शुल्क : 240/-

(वार्षिक शुल्क धनादेश, बैंक ड्राफ्ट, एटपार चैक या नकद एवं ऑनलाइन हस्तान्तरण की व्यवस्था है। सचिव, राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर के नाम से ही भेजें)

प्रकाशक

सचिव, राजस्थान साहित्य अकादमी,
सेक्टर-4, हिरण मगरी, उदयपुर (राज.) - 313 002
दूरभाष : 0294-2461717

मुद्रक

न्यूट्रेक ऑफसेट प्रिन्टर्स,
13, भोपा मगरी, न्यूजट्रेक नगर, हिरण मगरी,
सेक्टर-3, उदयपुर - 313 002

- : मधुमती के फेसबुक पेज से जुड़ें : -

https : www.facebook.commadhumatihindi

मधुमती में प्रकाशित रचनाओं का सर्वाधिकार रचनाकारों के पास है। मधुमती में प्रकाशित लेखों/ रचनाओं में व्यक्त विचार/ तथ्य लेखकों द्वारा प्रस्तुत हैं। मधुमती में प्रकाशित रचनाओं के लिए राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर का सहमत होना आवश्यक नहीं है और न ही अकादमी इसके लिए उत्तरदायी है।

समीक्षा का सत्याग्रह

अम्बिकादत्त शर्मा

जातीय अस्मिता के प्रश्न और जयशंकर प्रसाद – इस पुस्तक में जयशंकर प्रसाद केन्द्रित विजयबहादुर सिंह का अध्ययन,अध्यवसाय और अनुभव एक विस्तृत फलक पर अतीत को वर्तमान से जोड़ते हुए आकार और अर्थ दोनों ग्रहण करता है। इस किताब की अवधारणात्मक योजना का *आकार* जयशंकर प्रसाद का सभ्यताबोध है और उसका *अर्थ* भारत की जातीय अस्मिता पर आरोपित होती आ रही मिथ्या अस्मिताओं की पड़ताल और उनका अपवारण है। स्वाभाविक है कि ऐसी सुचिन्तित अवधारणात्मक योजना और अन्तर्दृष्टि के साथ जब भी कोई कृति अस्तित्व में आती है, तो उसमें एक कवि/साहित्यकार महज एक लेखक नहीं होता, बल्कि एक विचारक की भूमिका में प्रस्तुत होता है – अपने निजी अनुभवों और समझदारी के साथ/इस किताब में विजयबहादुर सिंह एक लेखक मात्र होने की सीमा का अतिक्रमण कर स्वतंत्रता पूर्व और स्वातंत्र्योत्तर भारत में भारतीयता की पहचान और अस्मिता–संकट को केन्द्रीय प्रश्न बनाकर उसे पूरे युग से संवाद करते हुए बतौर एक विचारक की भूमिका में प्रस्तुत हुए हैं। यही कारण है कि इस पुस्तक के सभी निबन्धों में विचार–केन्द्रित अन्विति के बजाय विचारक–केन्द्रित अन्विति अधिक उभर कर सामने आई है। विचारों में विचारक–केन्द्रित अन्विति अनुप्रासयुक्त पदों से निर्मित एक वाक्य की तरह होती है; जिसके अलग–अलग पद आनुप्रासिक सौन्दर्य और एकवाक्यता है।

जयशंकर प्रसाद के रचना–संसार को केन्द्र में रखते हुए उस पूरे युग की ऐतिहासिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक और पुराण–पंथी चेतना की समालोचना में निबद्ध इस किताब के सभी निबन्धों के माध्यम से विजयबहादुर सिंह ने मानों समीक्षा के सत्याग्रह का एक बड़ा आयोजन किया है। साहित्यिक समीक्षा का यह सत्याग्रह प्रसाद की *कामायनी* के बरक्स चिन्मय भारत के सम्यताबोध और उसके सत्य तथा धर्म का पुनराविष्कार है। इस पुनराविष्कार की अपरिहार्यता को ही उन्होंने प्रसाद की सर्जना के मूलस्वर के रूप में पकड़ा है और सफलतापूर्वक यह दिखाया है कि किस प्रकार प्रसाद अपने समय से लड़ते हुए भारत की जातीय अस्मिता की हकियत को फिर से प्राप्त करने के लिए आजीवन प्रयत्नशील रहे। इस किताब में संकलित–सांस्कृतिक साम्राज्यवाद और प्रसाद, सभ्यता का नवनिर्माण और प्रसाद, प्राचीन भारत और प्रसाद, प्रसाद और उनका भारत स्वप्न – जैसे निबन्धों के माध्यम से प्रसाद की वैचारिक लड़ाई को विजयबहादुर सिंह ने विदग्धना के साथ व्यंजित किया है। इन निबन्धों के माध्यम से उन्होंने भारतीय पुनर्जागरण की उस चेतना केन्द्रीय महत्त्व को भी उद्घाटित किया है जिसके माध्यम से ही भारत की प्रतिष्ठा भारतीय चित्त में हो सकती है। यह बात अलग है कि स्वातंत्र्योतर भारत का इतिहास और उसमें बुना गया सामाजिक व्याकरण अधिकांशत: यूरोपीय चित्त में भारत की प्रतिष्ठा करने वाला रहा है। पुनर्जागरणकालीन सुदृढ़ वैचारिक भूमि के बावजूद आजाद भारत में हम *स्वरूप*–